E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

प्रमाणपदार्थनिरूपण

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

तर्कभाषा में जिन सोलह पदार्थों का उल्लेख किया गया है, उसमें प्रमाण प्रथमस्थानीय है। इसको परिभाषित करते हुए तर्कभाषाकार का कथन है-"प्रमाकरणं प्रमाणम्"। अर्थात् प्रमा का करण प्रमाण है। यहाँ प्रमाण-यह शब्द (पद) लक्ष्य है (जिसका लक्षण करना है) और 'प्रमा का करण'-इतना अंश लक्षण है-"अत्र च प्रमाणं लक्ष्यं, प्रमाकरणं लक्षणम्"।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'मा' धातु से 'करण' अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय करने से 'प्रमाण' शब्द की निष्पत्ति होती है। इसीलिए 'प्रमा' के 'करण' यानी साधन को 'प्रमाण' कहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि प्रमा क्या है जिसके करण को प्रमाण कहा जाता है। इसको स्पष्ट करते हुए तर्कभाषाकार का कथन है कि "यथार्थानुभवः प्रमा"। अर्थात् 'यथार्थ अनुभव' का नाम 'प्रमा' है।

'प्रमा' के लक्षण में जो 'यथार्थ' पद दिया गया है, उससे अयथार्थज्ञान रूप 'संशय, विपर्यय और तर्क' का निराकरण किया गया है-"यथार्थ इत्ययथार्थानां संशयविपर्ययतर्कज्ञानानां निरासः"। प्रमा के लक्षण में यदि 'यथार्थ' पद को न रखें तो संशय, विपर्यय और तर्कज्ञान में 'प्रमा' के चले जाने से अतिव्याप्ति होगी। उस अतिव्याप्ति दोष के निवारणार्थ प्रमालक्षण में 'यथार्थ' पद रखना आवश्यक है। किस पद के रखने का क्या प्रयोजन है इसके जानने का सीधा मार्ग यह है कि उस पद को लक्षण से हटा दिया जाए और तब उसका क्या होता है इसको देखा तब उस पद को रखने की उपयोगिता प्रतीत होती है। जैसे यहाँ यदि यथार्थ पद हटा दिया जाए तो 'अनुभवः प्रमा' केवल इतना लक्षण रह जाता है। ऐसा करने पर शुक्ति को रजतरूप में ग्रहण करने वाला 'भ्रम' या 'विपर्यय' ज्ञान भी अनुभव रूप होने से 'प्रमा' कहलाने लगेगा। अथवा अंधेरे में किसी ऊँचे से पेड़ के ठूंठ को खड़ा देख कर 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' यह 'संशयात्म ज्ञान' भी अनुभव रूप होने से प्रमा कहलाने लगेगा। इसी प्रकार तर्कज्ञान में प्रमा का लक्षण चला जायेगा। परन्तु संशय, विपर्यय और तर्कज्ञान यथार्थज्ञान नहीं है। इस प्रकार कहा जा

सकता है कि अयथार्थ रूप 'संशय', 'विपर्यय' और 'तर्क' ज्ञान में प्रमा के लक्षण की अतिव्याप्ति के निराकरण के लिए 'यथार्थ' पद का सन्निवेश 'प्रमा' के लक्षणों में किया गया है।

उसी प्रकार प्रमालक्षण में यदि 'अनुभव' पद को न रखें तो 'स्मृति' में अतिव्याप्ति होगी क्योंकि 'स्मृति' भी ज्ञानविषयज्ञान होने से यथार्थ है। अतः प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति 'स्मृति' में न हो, इसीलिए प्रमालक्षण में 'अनुभव' रखना आवश्यक है। इस प्रकार 'स्मृति' के निराकरणार्थ 'अनुभव' पद होने से स्मृति का निराकरण हो जाता है।

स्मृति उस ज्ञान को कहते हैं, जिसका विषय पहले से ही ज्ञात रहता है। किन्तु, 'अनुभव' का विषय पहले से ज्ञात नहीं रहता है। इसीलिए स्मृति से भिन्न ज्ञान को 'अनुभव' बताया गया है- "ज्ञातविषयं ज्ञानं स्मृतिः। अनुभवो नाम स्मृतिव्यतिरिक्तं ज्ञानम्"।

वस्तुतः ज्ञान दो प्रकार का होता है-अनुभव तथा स्मृति। जिस ज्ञान का विषय पहले ही ज्ञात रहता है, उसे स्मृति कहते हैं। इसका आधार पूर्व अनुभव हुआ करता है। हम किसी वस्तु को देखते या छूते हैं, यह उसका अनुभव कहलाता है। इस अनुभव का संस्कार हमारी आत्मा में रहता है और फिर संस्कार के उद्बुद्ध हो जाने से उस वस्तु की स्मृति हो जाया करती है। इसीलिए स्मृति का लक्षण किया गया है-'ज्ञातविषयं ज्ञानं स्मृतिः"।

स्मृति से भिन्न ज्ञान को अनुभव कहते हैं। अनुभव भी दो प्रकार का होता है-यथार्थ और अयथार्थ। जो अर्थ (वस्तु, पदार्थ) जैसा होता है यदि उसका अनुभव भी उसी रूप में होता है तो वह अनुभव यथार्थ कहलाता है। फलतः तर्कभाषाकार ने यथार्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है- यथार्थोऽर्थाविसंवादी अर्थात् अर्थ के अनुरूप ज्ञान यथार्थ है। यथार्थ से विपरीत अनुभव को अयथार्थ कहते हैं। जो अर्थ जैसा होता है, उसका अनुभव उसी रूप में नहीं होता तो अनुभव अयथार्थ कहलाता है। वहाँ पदार्थ के स्वरूप की अपेक्षा भिन्न प्रकार से उसका अनुभव होता है। अनुभव पदार्थ स्वरूप से मेल नहीं खाता। इसी को स्पष्ट करने के लिए तर्कभाषाकार ने कहा है-"अयथार्थः तु अर्थव्यभिचारी"।

अयथार्थ अनुभव तीन प्रकार का माना जाता है जिनका संक्षिप्त विवेचन आगे किया जा रहा है-

विपर्यय- जो वस्तु जैसी नहीं है, उसे उस रूप में जान लेना विपर्यय कहलाता है। इसे भ्रम या भ्रान्ति भी

कहते हैं-'विपर्ययस्तु अतस्मिन् तद्ग्रहः'। 'विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम्' अर्थात् अतद्रूप में प्रतिष्ठित मिथ्या ज्ञान को विपर्यय कहते हैं। जैसे शुक्ति को पड़ी देखकर कभी-कभी उसके 'चाकचिक्य' अर्थात् चमक आदि के कारण उसको रजत समझ लिया जाता है। ऐसी दशा में शुक्ति में रजत का जो ज्ञान होता है, वह अतरूप अर्थात् अरजतरूप शुक्ति में प्रतिष्ठित होता है। अत एव अतद्रूप (उस वस्तु के स्वरूप में) अर्थात् अरजत रूप शुक्ति में प्रतिष्ठित होता है। अतएव अतद्रूप में प्रतिष्ठित होने के कारण उसको मिथ्या ज्ञान अथवा विपर्यय कहते हैं।

संशय- किसी एक पदार्थ में परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मों का ज्ञान संशय कहलाता है-'एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानार्थावमर्शः संशयः'। उदाहरणार्थ धुंधले से प्रकाश में कोई दूर से एक ठूँठ (स्थाणु) को देखता है तो उसे यह संशयात्मक ज्ञान होता है कि यह स्थाणु है या पुरुष (किमयं स्थाणुर्वा पुरुषो वा)। इस प्रकार का संशय ज्ञान अयथार्थ अनुभव है। क्यों? यथार्थ अनुभव तो वस्तु के अनुरूप होता है, वह निश्चयात्मक हुआ करता है, किन्तु संशय तो वस्तु के अनुरूप ज्ञान नहीं है, यह अनिश्चयात्मक है। वस्तु का स्वरूप तो निश्चित होता है।

तर्क-तीसरा अयथार्थ अनुभव तर्क है। जब दो पदार्थों में एक के रहने पर दूसरे का होना निश्चित होता है तो एक के न होने की कल्पना करते ही दूसरे का अभाव न चाहते हुए भी मानना पड़ता है। यही अनिष्ट की प्राप्ति तर्क कहलाती है-'तर्कोऽनिष्टप्रसङ्गः'। उदाहरणार्थ हम जानते हैं कि जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि भी होती है। किसी पर्वत आदि में धूम को दिखलाकर हमने किसी से कहा कि पर्वत में अग्नि है। उसने इसे नहीं माना-अग्नि के अभाव की कल्पना की। हमने तर्क दिया 'यदि यहाँ अग्नि न होती तो धूम भी नहीं होता'। यह तर्क यथार्थ अनुभव नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह पदार्थ-स्वरूप के अनुरूप निश्चयात्मक अनुभव नहीं है। हाँ, तर्क को प्रमाणों का सहायक माना जाता है।

तर्कभाषाकार ने करण का लक्षण किया है-साधकतमं करणम्। अतिशयितं साधकं साधकतमं प्रकृष्टं कारणमित्यर्थः। अर्थात् साधकतम को करण कहते हैं। अतिशय साधक अर्थात् सर्वोत्कृष्ट कारण साधकतम होने के कारण करण कहलाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि क्रिया की सिद्धि में जो प्रकृष्टोपकारक हो उसे करण कहते हैं।

तर्कभाषाकार ने 'करण' को प्रकृष्ट कारण कहा है। वस्तुतः एक कार्य के होने में अनेक कारणों की अपेक्षा होती है। उन कारणों में से कुछ तो 'साधारण' कारण और कुछ 'असाधारण' कारण हुआ करते हैं। जिन कारणों की अपेक्षा सभी कार्यों में होती है, उन्हें साधारण कारण कहते हैं। असाधारण कारणों में से जो प्रकृष्ट (अतिशययुक्त) कारण हो, उसे करण कहा जाता है। इस अतिशय प्रकर्ष को ही व्यापार कहते हैं। अत एव अन्य नैयायिकों ने 'करण' का लक्षण-"व्यापारवत् असाधारणं कारणं करणम्" किया है। अर्थात् व्यापार द्वारा जो जिस कार्य का असाधारण कारण हो, वही उस कार्य का करण बनता है। जैसे-कपालद्वयसंयोगरूपव्यापार के द्वारा दण्ड, चक्र, चीवरादि, घट के करण हो सकते हैं। इसी तरह तन्तुसंयोगरूपव्यापार के द्वारा तुरी, वेमा, तन्तु, आदि पट के करण हो सकते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि करण के होने पर कार्य की उत्पत्ति हो ही जाया करती है। इसीलिए करण का स्वरूप बतलाते हुए यह भी कहा गया है कि करण वह कारण है जिसके होने पर फल की अप्राप्ति नहीं रहती। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि जिसके होने पर द्वितीय या तृतीय क्षण में फल का अभाव नहीं रहता वह करण है।

इस प्रकार प्रमा और करण दोनों पदों की व्याख्या हो जाने से प्रमा का करण प्रमाण होता है, यह प्रमाण का लक्षण निश्चित हो गया।